जल, जंगल, जमीन, जीवन
भारतीय साहित्य में

डॉ. दादूराम शर्मा

जल और जंगल अन्योन्याश्रित हैं। वर्षा का जल जंगलों का पोषण करता है तो सूर्य द्वारा सतत वाष्पीभूत होकर अवशोषित होने वाले भूजल को वर्षा ऋतु में जंगल ही मेघों को रोककर उन्हें अपने संस्पर्श से जल बिन्दुओं में परिणत करके वर्षा द्वारा ज़मीन को लौटा देते हैं। प्रकृति के इस सनातन जलचक्र की विश्लेषक संस्कृत भाषा में इसीलिए 'वन' के दो अर्थ-जल और जंगल-''वने सलिल कानने'' (अमरकोश) बतलाकर उनके अन्योन्याश्रयत्व को रेखांकित किया गया है। जल है तो जंगल है, जंगल हैं तो जल है और जल-जंगल हैं तो ज़मीन है, ज़मीन पर जीवन है। जंगल नहीं रहेंगे तो जल भी नहीं रहेगा, प्राणवायु नहीं होगी और तब ज़मीन पर जीवन भी नहीं रहेगा तभी तो जंगल को और जीवन को जल का पर्यायवाची माना गया है। ज़मीन, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचतत्वों या पंचमहाभूतों से पर्यावरण भी बनता है और प्राणियों के भौतिक पिण्ड की संरचना भी होती है।

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः- धरती मेरी माँ है और मैं उसका पुत्र हूँ'' अथर्ववेद' के पृथिवीसूक्त' में ऋषि का यह अमर उद्घोष मानवीय चिन्तन की चरम परिणति है। धरापुत्र होने की यह अनुभूति और प्रतीति मनुष्य को धरती पर जन्मे और आश्रय लेने वाले समस्त चराचर, दृश्य-अदृश्य प्राणियों के साथ सहोदर भाव के पारिवारिक अनुराग के सूत्र में बाँध देती है। तब नदी-निर्झर, लता-वृक्ष, जंगल-पहाड़, पालित पशु-पक्षी, इतर जलचर-थलचर-नभचर जीव सभी उसके आत्मीय बन जाते हैं, इनसे उसका आत्मभाव स्वयमेव स्थापित हो जाता है। वह सभी प्राणियों को अपने में और अपने को सभी प्राणियों में देखने लगता है-

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति।।

यजुर्वेद 1/1

अचर या स्थावर जीवों-पेड़-पौधों, तृण-लताओं की जननी तो धरती है ही और चर या जंगम प्राणी भी जननी की कुक्षि से जन्म लेकर धरती की गोद में आंखें खोलते हैं। वही सबकी आश्रय स्थली है, सभी उसके परिवेश में व्याप्त वायु में सांसें लेते हैं, उसमें अवस्थित जल पीते हैं और उसी से प्राप्त भोजन से जीवन धारण करते हैं। वह रत्नप्रसवा है, वसुधानी है, सोना-चाँदी, हीरे-मोती सभी तो उससे प्राप्त होते हैं। फसलें उस पर लहलहाती रहती हैं अतः उसे शस्य श्यामला या हिरण्यवक्षा कहा जाता है, उसके वक्ष पर अजस्र प्रवाहमान नदी-निर्झर और आभ्यंतर जलधाराएं जीवन का जयनाद करती हैं। इसीलिए ऋषि की वाणी वसुन्धरा के स्तवन में मुखरित हो उठी हैं-

''विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यगर्भा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणं नो दधातु।।

अथर्ववेद 12/1/6

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।''

-वही-12/1/9

जल चराचर प्राणियों का जीवन है क्योंकि वह उनका पोषण, संरक्षण और संवर्धन करता है इसीलिए उसे 'अमृत', 'कीलाल' (रक्त) और 'जीवन' (जिंदगी, प्राणवत्ता) कहा गया है। वनों का पोषक, रक्षक और

जल और जंगल दोनों ही जीवन के लिए अतिआवश्यक हैं

संवर्धक होने के कारण उसी को 'वन' की संज्ञा दी गई है। जल है तो जहान है इसीलिए उसे 'भुवन' कहकर भी पुकारा गया है- पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्।- अमरकोश

वाष्प और मेघरूप में अंतरिक्ष में विद्यमान, जमीन पर नदी-निर्झरों में प्रवाहमान और कूप, तड़ाग, समुद्रादि में संचित जल सबका पोषण करता है, सबको प्रक्षालित करके शीतल और पवित्र करता है। बिना जल के जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती इसीलिए 'देवता' कहकर उसकी स्तुति की गई है-

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति, खनित्रिमा उत वा
याः स्वयंजाः।
समुद्रार्थाः याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह
मामवन्तु।।

ऋग्वेद 7/49/2

जल द्वारा विविध रोगों का निदान होता है। वेदों में जल भैषज्य वर्णित है-

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम

य.वे. 1/23/21

जिस तरह मानवरोपित उद्यान ग्रामों और नगरों के श्रृंगार हैं उसी तरह प्रकृति पोषित जंगल जमीन के श्रृंगार हैं। जंगल असंख्य जंगली जीवों के आश्रय स्थल हैं, वर्षा के कारक हैं, प्राण वायु के उत्सर्जक हैं, सूर्य की दाहकता के अवशोषक और शमक हैं इसलिए वातावरण के प्रशीतक और संतुलक हैं, हमारी विभिन्न जरूरतों के प्रतिपूरक हैं, स्वास्थ्यवर्धक-रोग निवारक औषधियों के आपूरक हैं। ये जमीन के संरक्षक हैं क्योंकि ये वर्षा जल के कटाव से धरती को बचाते हैं, उसकी उर्वराशक्ति को सुरक्षित रखते हैं।

जल और जंगल अन्योन्याश्रित हैं। वर्षा का जल जंगलों का पोषण करता है तो सूर्य द्वारा सतत वाष्पीभूत होकर अवशोषित होने वाले भूजल को वर्षा ऋतु में जंगल ही मेघों को रोककर उन्हें अपने संस्पर्श से जल बिन्दुओं में परिणत करके वर्षा द्वारा जमीन को लौटा देते हैं। प्रकृति के इस सनातन जलचक्र की विश्लेषक संस्कृत भाषा में इसीलिए 'वन' के दो अर्थ-जल और जंगल-"वने सलिल काननें" (अमरकोश) बतलाकर उनके अन्योन्याश्रयत्व को रेखांकित किया गया है। जल है तो जंगल है, जंगल हैं तो जल है और जल-जंगल हैं तो ज़मीन है, जमीन पर जीवन है। जंगल नहीं रहेंगे तो जल भी नहीं रहेगा, प्राणवायु नहीं होगी और तब जमीन पर जीवन भी नहीं रहेगा तभी तो जंगल को और जीवन को जल का पर्यायवाची माना गया है। ज़मीन, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचतत्वों या पंचमहाभूतों से पर्यावरण भी बनता है और प्राणियों के भौतिक पिण्ड की संरचना भी होती है।

वन भारतीय संस्कृति के आदिम उत्स रहे हैं। वह यहीं जन्मी, फैली-फूली और फलित हुई। यहीं पर शिक्षा के केन्द्र ऋषियों के तपोवन थे जहाँ नगर के कोलाहल से दूर गुरूकुलों के शान्त स्नेहिल और पवित्र वातावरण में राजा से लेकर रंक तक के ब्रह्मचारी बालकों (वटुओं) को बिना भेदभाव के शास्त्रों और जीविकोपार्जन की शिक्षा दी जाती थी। यहां शिक्षा प्राप्त स्नातक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। वहां अपने पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों का सम्यक निर्वहन करके वे पुनः सपत्नीक वानप्रस्थ जीवन ग्रहण करके तपोवनों में आश्रय लेते थे और 'ऋषि' कहलाते थे। ये ही गुरूकुलों के आचार्य (शिक्षक) होते थे। प्रधान आचार्य को 'कुलपति' कहा जाता था। ये तपस्वी ऋषि ही हमारी आचार-संहिता के रचयिता थे, विधायक थे, राजनीति के नीति नियामक सूत्रधार थे। नगरों में राजा और उनकी मंत्रिपरिषद् के पास और ग्रामों में पंचायतों के पास कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्ति अवश्य थी किन्तु जटिल विवादों और उलझनों को तपोवनों के महर्षियों के निर्देशन में ही सुलझाया जाता था।

तपस्वी ऋषियों ने आचार-संहिता वेदों, आरण्यकों, सूत्र-स्मृतियों और पुराणों की रचना की है। काव्य का जनम करूणा की कुक्षि से हुआ है। पर दुःख से द्रवित होना करूणा है। ब्रह्म की "एकोऽहं बहु स्याम प्रजेयम्" की सिसृक्षा को-सृष्टि-विस्तार के संकल्प को पूर्ण करने में लगे क्रौंच-मिथुन में से नर क्रौंच को अपने बाणों से विद्ध करके प्रकृति के विरूद्ध आचरण करने वाले व्याध के लिए अभिशप्त वाक्य में आदिकवि वाल्मीकि के कंठ से प्रथम श्लोक फूटा था- "मा निषाद प्रतिष्ठां त्वं गमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौंच-मिथुनादेकमवधीः कामभोहितम्।।" क्योंकि उसने परमात्मा की 'प्रजनश्चास्मि कंदर्पः" और "धर्माविरूद्धों भूतेषु कामोऽस्मि" रूप सृजन की इच्छा के विरूद्ध आचरण करके सृष्टि चक्र के संचालन में व्याघात उत्पन्न किया था। काव्य मृत्यु और विनाश का वारण करता है और जीवन और सृजन का वरण करता है, जीवन का जयगान करता है। जगमंगल विधायक काव्य का निस्सरण तपोवनों में तपोधनों की कालजयी लेखनी से हुआ है।

वन हमारी संस्कृति के केन्द्र थे और ग्राम एवं नगर सभ्यता के तपोवन अभयारण्य होते थे जहाँ तपोधान ऋषियों के संसर्ग से हिंसक जन्तु भी अपनी हिंसावृत्ति छोड़कर अन्य जीवों के साथ हिल-मिलकर रहते थे। उनमें वन्य जीवों का आखेट भी वर्जित था। नगर सभ्यता से लांछित-तिरस्कृत राजमहिषी गर्भिणी सीता ने महर्षि वाल्मीकि के तपोवन के विशाल अंक में आश्रय और संरक्षण पाया था। उनके अकारण परित्यागजन्य संताप का प्रशमन करते हुए महर्षि ने उन्हें आश्वस्त किया। था- "पुत्रि! शोक मत करो, समझो कि तुम अपने पिता के घर ही आ गई हो। तपस्वियों के संसर्ग से अपनी सहज हिंसावृत्ति को त्यागकर विनम्र और स्नेहिल बने इन जीवों के बीच

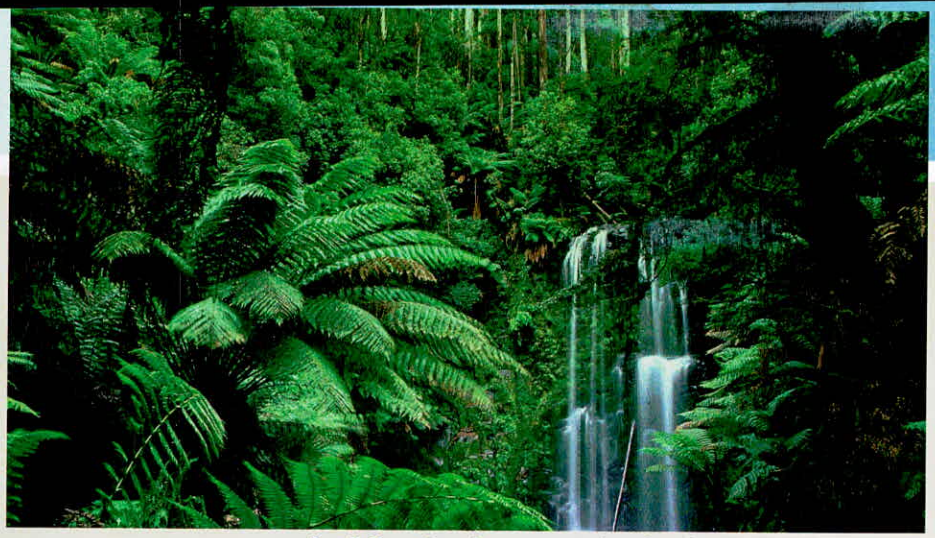

हमारे वनों में प्राकृतिक संपदा का अपार भंडार मौजूद है

पर्यावरण-असंतुलन और प्रदूषण से होने वाले सर्वनाश की विभीषिका ने अब हमारी आंखें खोल दी हैं और संसार के सभी देश पर्यावरण को संरक्षित और प्रदूषण मुक्त करने के भगीरथ प्रयास में जुट गए हैं। सर्वत्र प्रचुर मात्रा में पेड़ लगाए जा रहे हैं। वनों की अंधाधुंध कटाई पर रोक लगा दी गई है। वनों को अभयारण्य बनाकर वन्य जीवों के शिकार पर पूरे विश्व में पाबंदी लगा दी गई है। नदियों के जल को प्रदूषणमुक्त करने की परियोजनाएँ चलाई जा रही हैं। रासायनिक खादों के स्थान पर जैविक खादों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। हरबल खेती की जा रही है। परमाणु-अस्त्रों के विस्तार पर रोक लगाई जा रही है। प्रति वर्ष पाँच जून को ''विश्व पर्यावरण दिवस'' मनाया जा रहा है, जो अन्य विश्व दिवसों की तरह मात्र दिखावा या औपचारिकता नहीं। उसमें गंभीरता से विचार किये जा रहे हैं। अभी तक किए गए कार्यों की समीक्षा और योजनाओं की उपलब्धियों का आकलन करके भविष्य के लिए और भी त्वरित और कारगर योजनाएँ बनाई जा रही हैं।

तुम निर्भय होकर रहो। इसी पावन वातावरण में तुम्हारी संतान को भी निर्भयता, निर्वैरता, मैत्रीभाव और राग-द्वेष रहित विशाल हृदयता के संस्कार मिलेंगे।

-तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्तासि वैदेहि पितुर्निकेतम्।।

-रघु. 14/72

तपस्विसंसर्ग विनीतसत्वे तपोवने बीतभया वसास्मिन्।
इतो भविष्यत्सनघप्रसूतेरपत्यसस्कारमयो विधिस्ते।।

वही 14/75

अपने बल के अनुरूप घड़ों से आश्रम के पौधों को सींचकर पोषित करती हुई तुम पुत्रोत्पत्ति के पूर्व ही मातृत्व का प्रशिक्षण प्राप्त कर लोगी-

''पयोघटैराश्रमबालवृक्षान् संवर्धयन्ती स्वबलानुरूपैः।
असंशयं प्राक् तनयोपपत्तेः स्तनंधयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम्।।''

14/78

भारतीय संस्कृति देवोपासक है। 'देव' का लक्षण है-''देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद् वा-देने वाला, द्योतित या प्रकाशित होने और प्रकाशित करने वाला 'देव' है। इसीलिए जल देव है, जल के रूप में जीवन देने वाला जलद देव है, पिता है-पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु (अथर्व. 12/1/12), छाया, काष्ठ, पत्र पुष्प, फल, औषधियां और जीवों द्वारा उत्सर्जित कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को ग्रहण करके प्राणवायु का उत्सर्जन करने वाले पेड़ देव हैं, वन देव हैं, पहाड़ देव हैं, प्रकाशित होने और प्रकाशित करने वाला ऊष्मा और ऊर्जा का अक्षय स्रोत सूर्य तो देव है ही, अग्नि देव है चन्द्र देव है, तारे देवता हैं, धरती और नदियाँ तो देवी ही नहीं माता भी हैं, गो माता है, वायु देव हैं। इन देवताओं की स्तुति आराधना और उपासना भारतीय संस्कृति की कृतज्ञता की भावना को रेखांकित करती हैं। हमारे ऋषियों और महाकवियों ने धरा से लेकर गगन तक के समस्त प्राकृतिक उपादानों का मानवीकरण करके उनसे मानव के अनुरागमय पारिवारिक सम्बन्ध जोड़ दिए हैं।

सर्वलोकबंदित सर्वेश्वर शिव किसी अज्ञात लोक में नहीं, इसी धरा पर अवस्थित पर्वतराज हिमालय के उत्तुंग शिखर कैलास में सतत निवास करते हैं। भगवती पार्वती तो पर्वतराज कन्या है ही और सीता भी भूमिजा हैं, धरापुत्री हैं। मानवता के संरक्षक, संस्थापक और प्रेरक राम का रामत्व, सीता का वंदनीय-वरणीय नारीत्व, मुरलीधर गोपालकृष्ण का कृष्णत्व, बलराम का हलधरत्व, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि का कवित्व, सिद्धार्थ का बुद्धत्व, वर्धमान का अपरिग्रही महावीरत्व सभी तो वनों की गोद में पले, बढ़े और विकसित हुए हैं।

फिर आया बीसवीं सदी की आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता का युग, भूमंडलीकरण का युग, जिसमें दुनिया सिमटकर छोटी हो गई, दूरियाँ घट गई। विज्ञान नए-नए आविष्कारों से मानव की प्रकृति पर निर्भरता को जैसे मिटाने लगा। प्रकृति देवी से दासी बन गई, उसकी स्वार्थसिद्धि का साधनमात्र रह गई। मानव के सुख-साधन जुटाने वाला विज्ञान विनाशक आणविक अस्त्रों का आविष्कार कर-करके युद्ध द्वारा सर्वसंहार की त्रासदी और विभीषिका उत्पन्न करने लगा, ग्लोबल वार्मिंग से हिम शैल ग्लेशियर पिघलने लगे और समुद्र का जलस्तर बढ़ने से आवासीय भूमि सिमटने लगी। शहरीकरणोन्माद समस्त वनसम्पदा का निर्मम्मतापूर्वक दोहन करने लगा और जंगलों को अनावश्यक और जंगलीपन का कारक और परिचायक मानकर मिटाने लगा। पेड़ के शब्दों में-

फिर आई हमारे शवों पर पली-बढ़ी मशीनी सभ्यता!

उजड़े वन, बसे नगर, लगे कल-कारखाने
उठ गए हमसे बहुत ऊँचे तुम सभ्यता के दीवाने!
कारखाने करने लगे नदियों का दूषित जल
चिमनियां और वाहन उगल रहे धुआँ अविरल
उनकी कर्णवेधी ध्वनि कर रही सबको विकल
तुम्हारे प्रश्वास से भर गया वायुमंडल
होकर प्रदूषित अब खो बैठा संतुलन!
हमारे अभाव में हमारे चिर सहचर
घिरते नहीं नभ में अब पूर्ववत् जलधर
घिरें भी तो बरसे बिना जाने कहाँ उड़ जाते
और चर-अचर सब तरसते रह जाते

इस तरह काटकर हमें, काट लिया अपना मूल
कितनी महंगी पड़ी तुम्हें मानव! तुम्हारी भूल?
(स्वरचित ''पेड़ की पुकार'' कविता से)
ओजोन-पर्त में प्रदूषण सतत बढ़ाता छेद)
क्यों न समझता मनुज इस सर्वनाश का भेद?
(स्वरचित 'प्रदूषण' कविता से)

साहित्य मानवीय संवेदना को जागृत और विकसित करता है, चिन्तन को सही दिशा देता है, आचरण और व्यवहार का संस्कार करता है और समाज में सौहार्द, सहिष्णुता, समन्वयशीलता, सहयोग, सहभाव और परस्पर समर्पण की भावना जगाता है। और यह साहित्य प्रकृति की गोद में जन्म लेता है, प्रकृति द्वारा प्रेरित और विकसित होता है। प्रकृति पोषित साहित्यकार सृष्टि का, समाज का सचेतक प्रहरी है। पर्यावरण असंतुलन और प्रदूषण उत्तर आधुनिक युग की विकराल समस्या है। सर्वाधिक संवेदनशील होने से साहित्यकार की उसके लिए

चिन्ता और उसके निवारण के लिए चिन्तनपरक सर्जना स्वाभाविक है-

करें वायु-ध्वनि प्रदूषण ये कल-वाहन-यंत्र।
उलट दिया विज्ञान ने सहज प्रकृति का तंत्र।।
सरजल दूषित सरित्जल भूजल, सागर-नीर।
मृदा प्रदूषित गगन भी दूषित हुआ समीर।।
कलम लिए विज्ञान की आज मनुज मति-मंद।
प्रदूषण मसि से लिखे, सर्वनाश के छन्द।।
(स्वरचित 'प्रदूषण' कविता से)

जब तक मानव प्रकृति का उपासक, सहचर और सेवक रहा, पंचमहाभूतों में समन्वय और संतुलन बना रहा, ऋतुचक्र यथावत् चलता रहा, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, सूखा और अकाल का संकट नगण्य रहा।

आज अपने को और समग्र जीवजगत् को सर्वनाश से बचाने और प्रकृतिचक्र को पूर्ववत् संतुलित करने का एकमात्र उपाय है प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन, प्रकृति के साथ अपने पहले जैसे रागात्मक सम्बंधों की पुनः स्थापना, जिसकी दिव्य और भव्य झाँकी हम अपने आदि राष्ट्रकवि किंवा विश्वकवि कालिदास के काव्य में देखते हैं।

अतीत में तपोवन, अभयारण्य होते थे, जिनमें वन्य जीवों का आखेट वर्जित था। राजा को भी इस नियम का कठोरता से पालन करना पड़ता था। अतः "अभिज्ञान शाकुंतलम" का नायक राजा दुष्यन्त जब भूल से आश्रम परिसर में प्रवेश करके हरिण को अपने बाण का निशाना बनाना चाहता है तो आश्रम का एक वटु-"राजन् आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः" कहकर न केवल उसे रोक देता है अपितु उसे राजधर्म का स्मरण कराने से भी नहीं चूकता- "आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागरिसि-राजन्! आपका शस्त्र तो पीड़ितों की, दीन-दुःखियों और दुष्टों से सताए गए प्राणियों की रक्षा के लिए है, निरपराध वन्य जीवों को मारने के लिए नहीं।"

शकुन्तला का शिशु भरत तपोवन में सिंह शावक के साथ खेलता है, उसके दांत गिनता है और उसकी मां सिंहनी के आ जाने पर भी उससे जरा भी भयभीत नहीं होता।

मनुष्य की मनुष्यता औरों का जीवन लेने में नहीं, उनका जीवन बचाने और उन्हें जीवनदान देने में है। महाराज दिलीप जब भूखे सिंह के पंजों में छटपटाती, कातर नेत्रों से निहारती नंदिनी गो को शस्त्रबल से नहीं बचा पाते तो यह कहते हुए- "भाई सिंह! कृपा करके मेरा यह शरीर ले लो और इसे खाकर अपनी भूख मिटा लो, किंतु सद्यःजात बछड़े की माता इस नंदिनी को छोड़ दो-

"स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद।
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षे।।"

अपना शरीर मांस के लोथेड़े की तरह भूखे सिंह के आगे डाल देते है-स न्यस्त शस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत् पिण्डमिवामिषस्य। परप्राण रक्षा के लिए आत्मबलिदान की दयावीरत्व की कैसी दिव्य झाँकी है।

महर्षि कण्व के आश्रम के वृक्षों को घड़ों से पानी देती शकुन्तला और उसकी सखियों का यह मनोहर वार्तालाप सुनिए, जिसमें महाकवि ने वृक्ष-लताओं से उनके पारिवारिक स्नेह का हृदयावर्जक दृश्य उपस्थित कर दिया है। अनसूया हला शकुन्तले! त्वत्तोऽपि तातकण्वस्य आश्रमवृक्षाः प्रियतराः इति तर्कयामि येन नवमालिका-कुसुम-परिपेलवापि त्वमेतेषामालबालपरिपूरणे नियुक्ता। (सखि, शकुन्तले! लगता है, तात कण्व को आश्रमवृक्ष तुमसे भी अधिक प्रिय हैं तभी तो नवमालिका के फूलों से भी कोमल तुमको इन्हें घड़े से पानी देने के कठिन श्रमसाध्य कार्य में लगा रखा है। शकुन्तला- हला अनसूये! न केवलं तातकण्वस्य नियोगः ममापि एतेषु सहोदर स्नेहः। (सखि अनसूये! तात कण्व के आदेश से ही मैं इन्हें नहीं सींच रही हूँ अपितु मेरा भी इन पर सगे भाइयों जैसा प्रगाढ़ स्नेह है।) सीता भी महर्षि वाल्मीकि के तपोवन के वृक्षों को सींच-सींचकर मातृत्व का पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त करती हैं।

महर्षि पतिगृह जाती हुई अपनी पुत्री शकुन्तला के लिए लता-वृक्षों के परिवार से कैसे मार्मिक शब्दों में विदा मांग रहे हैं-"हे तपोवन के स्नेही पादपों! अरी अनुराग-रंजित लताओं! जो तुम्हें बिना सींचे स्वयं कभी जल पीने का भी विचार नहीं करती थी, जिसे यद्यपि पुष्पों और पल्लवों के आभूषण अत्यंत प्रिय थे किन्तु तुम्हें कष्ट न हो इसलिए जिसने कभी तुम्हारे पल्लव तक नहीं तोड़े और तुम्हारा पुष्पित होना ही जिसके लिए महान् उत्सव होता था, वही तुम्हारी स्नेहशीला शकुन्तला आज पतिगृह जा रही है, आप सभी कृपया उसे जाने की अनुमति प्रदान करें-

"पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वसिक्तेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आदौ वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्याः भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।"
अभिज्ञान शाकुंतल 4/11

और प्रकृति के प्रतिनिधि वसन्त के अग्रदूत कोकिल ने कूक द्वारा मधुर स्वर में उसे विदाई दी। शकुन्तला अपनी बहन माधवी लता से लिपटकर कैसे करूणा विगलित स्वर में विदा माँग रही है-

प्रकृति के सौन्दर्य का अनूठा दृश्य

"लता बहन! अपनी शाखारूपी भुजाओं से मेरा प्रत्यालिंगन करो। आज से मैं तुमसे दूर हो जाऊँगी। पिताजी, आप मेरी तरह मेरी इस प्यारी बहन की भी देख-भाल कीजिएगा- लता भागिनि! प्रत्यालिंग मां शाखामयैर्बाहुभिः। अद्यप्रभृति दूर वर्तिनी खलु ते भविष्यामि। तात! अहमिव इयं त्वया चिन्तनीया।" फिर आसन्न प्रसवा मृगी पर उसकी दृष्टि पड़ती है और वह पिता से अनुरोध करती है कि जब उसकी संतानोत्पत्ति हो तो वह शुभ समाचार उसे अवश्य पहुंचाया जाय- तात! एषा उटजपर्यन्तचारिणी गर्भभार मंथरा मृगवधूर्यदा सुखप्रसवा भविष्यति तदा मे कमपि प्रियनिवेदकं विसर्जयिष्यसि। मा स्मिरिष्यसि।"

जिस मातृविहीन मृगषावक का उसने पुत्रवत् पालन किया था, उसे वह किसी तरह पिताजी को सौंपकर जाने का प्रयास करती है। विदा होती शकुन्तला के लिए समग्र प्रकृति आज जीवन्त हो उठी है। किसी वृक्ष ने उसे पहनने के लिए रेशमी वस्त्र दिए हैं, किसी ने चरण रँगने को महावर दिया है तो अन्य पादपों ने वनदेवता के हाथों से उसके अलंकरण के लिए दिव्य आभूषणों के उपहार दिये हैं। (शाकुं. 4/7) शकुन्तला को आश्रम से सदा के लिए विदा होते देखकर हरिणियों ने कुशाओं के ग्रास उगल दिए, मोरों ने नाचना बन्द कर दिया और लताएं पीले पत्तों के रूप में आँसू बरसाने लगीं-

उद्गीर्ण दर्भकवला मृगी, परित्यक्तननर्तना मयूरी।
अपसृत पाण्डुपत्रा मुचंत्यश्रु इव लताः
शाकु. 4/14

उस युग में पशु-पक्षियों से भी मानव के दृढ़ मैत्री सम्बन्ध थे। गृध्र जटायु की महाराज दशरथ से

प्रचण्ड ग्रीष्म काल में भी पेड़ भूमि से अपना अहार प्राप्त कर लेते हैं

मित्रता थी। रावण द्वारा हरी जाती हुई उनकी पुत्रवधू सीता को छुड़ाने में अपने प्राणों का पण (बाजी) लगाकर उसने मैत्रीधर्म का हृदयावर्जक उदाहरण प्रस्तुत किया था-

तौसीतान्वेषिणौ गृधं लूनपक्षमपश्यताम्।
प्राणैर्दशरथ प्रीतेरनृणं कण्ठवर्तिभिः ।।

'रघुवंश' 12/56

और पिता दशरथ भी जिनसे अंतिम संस्कार का सौभाग्य न पा सके, उन्हीं राम ने पिता के उस महान परोपकारी मित्र का अपने हाथों पिता के समान ही अंतिम संस्कार किया-

पितरीवाग्नि संस्कारात् परा ववृतिरे क्रियाः

-वही 12/58

जीवनदायक सर्वसंतापहारी जलद और उसके वक्ष पर कौंधती उसकी प्रियतमा तडित् को भी महाकवि ने अनुराग तरलित जीवन से सम्पृक्त कर दिया है। पक्व-पीताभ फलों से लदे आम्रवनों वाले आम्रकूट पर जब श्याम धन आश्रय लेता है तो वह धरती नाता के बीच में काले और चारों ओर से गोरे पयोधर की कांति को धारण कर लेता है-

छन्नोपान्तः परिणत-फल-द्युतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणी सवर्णे।
नूनं यास्यत्यमर मिथुन प्रेक्षणीयामवस्थां,
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेष-विस्तार-पाण्डुः।।

-मेघदूत 1/18

महाकवि की सजल जलधर के लिए माँ वसुंधरा के दुग्धस्रावी स्तनमुख की परिकल्पना कितनी सटीक है! माँ स्तनपान कराकर अपने शिशु का पोषण करती है तो धरती माता का स्तन जलद जलवृष्टि करके वनस्पतियों को नवजीवन देता है, प्राणियों के लिए घास आदि और मनुष्यों के लिए अन्न उत्पन्न करता है।

महर्षि वाल्मीकि ने "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" कहकर माता और मातृभूमि की सर्वोपरिता और महत्ता पर मुहर लगा दी है, कालिदास उसे 'देवभूमि' कहते हैं और "विष्णु पुराण" में तो देवताओं ने भी पुरूषार्थ की स्थली तथा स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) की हेतुभूत भारतभूमि की महिमा गायी है-

गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ये
भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतुभूते भवन्ति भूयः पुरूषाः
सुरत्वात्।।

'रामचरितमानस' में लंका विजय करके लौटते राम अपने विजयाभियान के सहयोगी सुग्रीव आदि मित्रों से अपनी जन्मभूमि अयोध्या को बेकुंठ से भी श्रेष्ठ बतला रहे हैं-

"जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेद पुरान विदित जग जाना।। अवधपुरी सम प्रिय नहीं सोउ"

रामराज्य में धरती पर बारहों महीने फसलें लहलहाती थी, वन वनसम्पदा से समृद्ध थे, वृक्ष सदैव फूलते-फलते थे, वन्य जीव परस्पर वैरभाव को भूलकर निर्भय विचरण करते थे, सरिताओं का जल, प्रदूषणमुक्त होने से निर्मल, सुस्वादु और स्वास्थ्यवर्धक था, समुद्र मर्यादा में रहते थे, मेघ यथेष्ट वर्षा करते थे, सूर्य आवश्यकतानुसार तपता था- (रामचरितमानस 7/23)

'आनन्दमठ' में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने "सुजला, सुफला, मलयजशीतला, शस्य-श्यामला, फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदलशोभिनी सुखदा, वरदा भारतमाता की वन्दना की है।

'निराला' ने भारतमाता का बड़ा ही भव्य और दिव्य चित्र अंकित किया है। वह लंका के शतदल कमल पर अवस्थित है, समुद्र स्तवन करता हुआ उसके चरण धो रहा है वह तरू-तृण-वन-लता-निर्मित पुष्प सज्जित हरित दुकूल, गंगा के धवलहार और हिमगिरि के रजत किरीट से सुसज्जित है। पवित्र ओंकार की ध्वनि से मुखर है। ऐश्वर्य और समृद्धि के प्रतीक 'कनक' खाद्यान्न की प्रचुरता के प्रतीक 'शस्य' और शांति-मैत्री-सद्भाव के प्रतीक 'कमल' को धारण करती है।

राष्ट्रकवि 'दिनकर' नगपति हिमालय को "साकार दिव्य गौरव विराट् पौरूष के पुंजीभूत ज्वाल" कहकर पुकारते हैं।

अत्याधुनिक मानव भौतिक सुख-सुविधाओं के संसाधन बटोरने में इतना व्यस्त है अथवा उनके विषमय और त्रासद उपभोग में इतना मग्न हो गया है कि इस अमृतमयी प्रकृति की उसने पूर्णतः उपेक्षा कर दी है-

"मेरी कविता में गौरैया, वसन्त की धूप वहीं रह गए।
और मैं चल दिया!
इनकी स्मृतियां रह गई वहीं मेरे घर!

(रघुवीर सहाय)

जबकि "सतपुड़ा के घने जंगल" (भवानी प्रसाद मिश्र) में प्रकृति की गोद में पलने वाले, अभावग्रस्त जीवन जीने वाले वनवासी सहज संतोष और स्वास्थ्य से सम्पन्न होने के कारण अकिंचन होते हुए भी धनी हैं और सर्वसुविधा सम्पन्न होने पर भी सदैव असंतुष्ट और विविध व्याधियों से जूझते रहने वाले शहरी कितने निःस्व हैं, कितने गरीब हैं क्योंकि उनके जीवन में ऐसा सहज उल्लास और आमोद-प्रमोद कहाँ है?

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबन्धों में 'वृक्ष' सर्वत्र मानव की उद्दाम जिजीविषा के पोषक और अभिनंदनीय-अनुकरणीय उदात्त मानवता के प्रेरक हैं। 'कुटज' कठोर पाषाण को भेदकर, वायुमंडल को चूसकर, झँझा-तूफान को रगड़कर अपना प्राप्य वसूल लेता है, आकाश को चूमकर अवकाश की लहरी में झूमकर उल्लास खींच लेता है। ('कुटज' पृ. 12) शिरीष प्रचण्ड ग्रीष्म में जब धरती और आसमान जलते रहते हैं तब भी न जाने कहां से अपना रस खींचते रहता है। भयंकर लू के समय कोमल तंतजाल और सुकुमार केसर उगा सकता है। ('कल्पलता' पृ. 25) देवदारू को द्विवेदी जी ने उर्ध्वमुखी चेतना से अनुप्राणित देखा है। वह गुरूत्वाकर्षण के जड़ वेग को एवं धरती के आकर्षण को अभिभूत करके लगातार ऊपर बढ़ते जाता है। कालजयी महापुरूष भी साधारण आदमियों की तरह जमीन से ही नहीं चिपटे रहते, भौतिक आकर्षण में ही नहीं बंधे रहते अपितु जमीन से जुड़े रहकर भी निरंतर ऊपर उठते जाते हैं। धरती से उन्हें लगाव तो होता है किन्तु उस लगाव में निरपेक्ष प्रेम और करूणा का भाव होता है, मोह का नहीं। वे देना ही जानते हैं, लेना नहीं शिव धरती की जड़ता पर जागतिक माया-मोह को उच्छिन्न करके आत्मानंद में भरकर ताण्डव करते हैं तो देवदारू भी धरती से बहुत ऊपर उठकर अपनी गगनचुम्बी झूमती हुई शाखाओं से ताण्डव नृत्य करता है। ('कुटज' पृ. 76-78)

मारणास्त्रों का विकास और विस्तार मनुष्य की आदिम बर्बरता और पशुता के अवांछनीय नवविकास को सूचित कर रहा है। आत्मघाती मानव बम बनकर निपराध जनसमूह को मौत के घाट उतारने में लगे आतंकियों के ओले जैसे-"जिमि हिम उपल कृषी दिल गरहीं' कृत्य ने तो विश्व को दुश्चिन्ता में डाल दिया है। जगत् को सर्वनाश से बचाने के लिए नाखूनों की तरह उन्हें काटकर नियंत्रण और मर्यादा में रखना आज की अनिवार्यता है। मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है। मनुष्य अपने इन नाखूनों को और नहीं बढ़ने देगा। ('कल्पलता' पृ. 11)

महीयसी महादेवी का नारीत्व विराट्ट मातृत्व में परिणत होकर अपने असीम वात्सल्याप्लावित अंक में- ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' के घेरे में रोपित पेड़-पौधों, स्वतंत्र और पालित पशु-पक्षियों, दलित, शोषित, लांछित, अनादृत, अपेक्षित और अभावग्रस्त समस्त नर-नारियों को सस्नेह समेटकर अपने 'महादेवी' नाम को जैसे चरितार्थ कर देता है।

मनुष्य की क्रूर और रक्तपिपासु आखेटप्रियता की भर्त्सना कैसे मार्मिक शब्दों में उन्होंने की है- ''जिन्होंने हरीतिमा में लहराते हुए, मैदान पर छलांग भरते हुए हिरनों के झुंड को देखा होगा वे ही उस उद्‌भुत गतिशील सौन्दर्य की कल्पना कर सकते हैं मानो सरल मरकत के समुद्र में सुनहले फेन वाली लहरों का उद्वेलन हो। परंतु जीवन के इन चल सौन्दर्य के प्रति शिकारी का आकर्षण नहीं रहता। मनुष्य जीवन की ऐसी सुन्दर ऊर्जा को निष्क्रिय और जड़ बनाने के कार्य को मनोरंजक कैसे कहता है? मनुष्य मृत्यु को असुन्दर ही नहीं, अपवित्र भी मानता है। उसके प्रियतम आत्मीय जन का शव भी उसके निकट अपवित्र, अस्पृश्य तथा भयजनक हो उठता है! जब मृत्यु इतनी अपवित्र है तब उसे बाँटते घूमना क्यों अपवित्र और असुन्दर कार्य नहीं है?

आकाश में रंग-बिरंगे फूलों की धाराओं के समान उड़ते हुए और वीणा, वंशी, मुरज, जल तरंग आदि वृंद वादन बजाते हुए पक्षी कितने सुंदर जान पड़ते हैं। मनुष्य ने बंदूक उठाई, निशाना साधा और कई गाते-उड़ते पक्षी धरती पर ढेले के समान आ गिरे! किसी की लाल-पीली चोंच वाली गरदन टूट गई, किसी के पीले सुंदर पंजे टेढ़े हो गए और किसी के इन्द्रधनुषी पंख बिखर गए। क्षत-विक्षत रक्तस्नात उन मृत-अर्धमृत लघुगातों में न अब संगीत है, न सौन्दर्य! परन्तु मारने वाला अपनी सफलता पर नाच उठता है।''

मनुष्य की ऐसी क्रूर मनोरंजनप्रियता को ऐसे ही मर्मस्पर्शी शब्दों द्वारा उसके हृदय को मथकर, उसमें तीव्र संवेदना उत्पन्न करके संस्कारित या समाप्त किया जा सकता है और परमात्मा द्वारा प्रकृति को दिए गए पशु-पक्षियों के इन अमूल्य उपहारों को बचाकर पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सकता है।

राष्ट्रीयकवि मैथिलीशरण गुप्त की पृथिवी माता अपने ऊपर विनाश का ताण्डव करने वाले बेटे मानव से कह रही है-

''तुझको बड़े से बड़ा देखना चाहती हूँ मैं
मेरे जात! सारे जन्तुओं में मुख्य तू ही है
तो व्यक्तित्व अपना समष्टि में मिला दे तू
देश, कुल, जाति, किंवा वर्ग-भेद भूलकर
भीति नहीं प्रीति यथा ऋृति तेरी नीति हो,
उठ बढ़ ऊँचा चढ़ संग लिए सबके
सबके लिए तू और तेरे लिए सब हों

रासायनिक खादों के स्थान पर जैविक खादों का प्रयोग कर हर्बल खेती पर बल दिया जा रहा है

नाश में लगी जो बुद्धि विलसे विकास में
'पृथिवीपुत्र' पृ. 64

तो राष्ट्रकवि दिनकर चिन्तकों, कलाकारों और साहित्य सृष्टाओं से कह रहे हैं-

विज्ञान काम कर चुका हाथ उसका रोको
आगे आने दो गुणी! कला कल्याणी को!
''धूप और धुँआ''

और अब साहित्यकार कामायनीकार के शब्दों में पुनर्नवसृजन के लिए मानव की समवेत शक्ति का आवाहन करने लगे हैं-शक्ति के विद्युतकरण जो व्यस्त विकल बिखरे हों, हो निरूपाय समन्वय उनका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।

पर्यावरण-असंतुलन और प्रदूषण से होने वाले सर्वनाश की विभीषिका ने अब हमारी आंखें खोल दी हैं और संसार के सभी देश पर्यावरण को संरक्षित और प्रदूषण मुक्त करने के भगीरथ प्रयास में जुट गए हैं। सर्वत्र प्रचुर मात्रा में पेड़ लगाए जा रहे हैं। वनों की अंधाधुंध कटाई पर रोक लगा दी गई है। वनों को अभयारण्य बनाकर वन्य जीवों के शिकार पर पूरे विश्व में पाबंदी लगा दी गई है। नदियों के जल को प्रदूषणमुक्त करने की परियोजनाएं चलाई जा रही हैं। रासायनिक खादों के स्थान पर जैविक खादों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। हरबल खेती की जा रही है। परमाणु-अस्त्रों के विस्तार पर रोक लगाई जा रही है। प्रति वर्ष पाँच जून को ''विश्व पर्यावरण दिवस'' मनाया जा रहा है, जो अन्य विश्व दिवसों की तरह मात्र दिखावा या औपचारिकता नहीं। उसमें गंभीरता से विचार किये जा रहे हैं। अभी तक किए गए कार्यों की समीक्षा और योजनाओं की उपलब्धियों का आकलन करके भविष्य के लिए और भी त्वरित और कारगर योजनाएँ बनाई जा रही हैं।

दिसंबर 2009 में डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में ''अंतर्राष्ट्रीय जलवायु सम्मेलन'' आयोजित हुआ। इसमें ''ग्रीन हाउस गैसों'' के उत्सर्जनकर्ता देशों को अपने कार्बन-उत्सर्जन-कटौती के लक्ष्यों की लिखित घोषणा 10 जनवरी 2010 तक करने और उसे शीघ्रतिशीघ्र पूरा करने को कहा गया था। जिसका प्रायः पालन हुआ है।

मुनष्य विधाता की सर्वोत्तम कृति है। सृजन और संरक्षण उसकी सहजात प्रकृति है, स्वभाव है, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व उसका ध्येय है। इसलिए हम आशान्वित हैं कि वह विनाश से विरत होकर सृजन और संरक्षण में लग जाएगा। और अब हमें विनाश के दारूण और हृदयविदारक दृश्य नहीं देखने पड़ेगे, अकारण मारे गए लोगों के परिजनों के करूण आर्तनाद नहीं सुनने पड़ेंगे और हमारे वैदिक ऋषि की यह मंगल कामना मूर्त हो जाएगी-

माभ्राता भ्रतरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भ्रदया।।
भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः भद्रं
पश्येमाक्षभिर्यजत्र।ः।

भाई भाई से और बहन बहन से द्वेष न करे। सभी सद्‌भाव और सत्संकल्प वाले बनकर कल्याण कर वचन बोलें। हे परमात्मा! हम कानों से कल्याणकर वचन और शुभ समाचार सुने और आँखों से कल्याणमय दृश्य देखें।

संपर्क करें:
डॉ. दादूराम शर्मा
महाराज बाग, भैरवगंज
सिवनी (म.प्र.) पिन-480 661
मो.न. 08878980467, 07692222792
ईमेलः asdeva292@gmail.com